

## खामोशी के खिलाफ जनतांत्रिक लय की वकालत

निरंजन सहाय

### लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में पी.एच.डी. और पेशे से प्राध्यापक। समकालीन शैक्षिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर निरंतर लेखन। एन.सी.ई. आर.टी. समेत विभिन्न विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम समिति सदस्य रहे हैं। इग्नू (दिल्ली), कोटा खुला विश्वविद्यालय, जैन विश्वभारती (लाडनू) के पाठ लेखन से सम्बद्ध। 'केदारनाथ सिंह और उनका समय' आलोचना पुस्तक 2008 में प्रकाशित। 'शिक्षा और सरोकार' पुस्तक प्रेस में।

### सम्पर्क :

इन्द्रप्रस्थ कॉलोनी, नीमच रोड, कानोड़,  
जिला-उदयपुर, राजस्थान, पिन-313604

**मा**तृभाषा का समझ से क्या रिश्ता है ? क्या भाषाओं की उपेक्षा उस भाषा की सांस्कृतिक विरासत की अनदेखी है ? क्या करोड़ों बच्चों की मातृभाषा की उपेक्षा कर शिक्षा की कोई जनतांत्रिक अवधारणा हासिल की जा सकती है ? ज्ञान-विज्ञान की दुनिया में पहले दर्जे की प्रतिभा और मातृभाषा में अर्जित की गई शिक्षा का कोई रिश्ता है ? यदि मातृभाषा को समझ का माध्यम स्वीकार किया जाए तो उसका स्वरूप कैसा हो ? गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन आदि में क्या मातृभाषा को माध्यम शिक्षा के रूप में स्वीकार करना संभव है ? अंग्रेजी और हिन्दी के बीच क्या समझदारी भरे पुल की जरूरत है ? अध्ययन और बहुभाषिकता, अध्ययन और आदिवासी भाषाओं के बीच संवाद के क्या मायने हो सकते हैं ? इन सभी मुद्दों पर देशव्यापी बहस की जरूरत को एन.सी.ई.आर.टी. ने शिद्दत से महसूस करते हुए पिछले दिनों एक मुहिम का आगाज किया। 27-28 अगस्त को पटना में जब इस मुद्दे पर एक परिसंवाद का आयोजन हुआ तब बरबस इस मुहिम ने शिक्षा से जुड़े संवेदनशील तबके को अपनी ओर आकर्षित किया। परिसंवाद का आयोजन एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली ने एस.सी.ई.आर.टी., युनिसेफ और बिहार विद्यालय परीक्षा समिति, पटना के सहयोग से डॉ. मदन मोहन झा स्मृति सभागार में किया। देश भर से आमंत्रित भाषा और समझ के रिश्ते पर काम करने वाले अध्येताओं, अध्यापकों और बुद्धिजीवियों की शिरकत से सम्पन्न इस परिसंवाद का आयोजन अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय और विचारोत्तेजक रहा।

परिसंवाद के पहले दिन संभागियों के बीच वितरित किए गए ब्रोशर ने प्रस्तावित संवाद की दिशा को एक हद तक स्पष्ट कर दिया। प्रसंगवश ब्रोशर की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत करना गैरमुनासिब नहीं होगा :- 'हमारे दो होंठ हैं। दोनों मिलते हैं। जबान के साथ मिलकर एक लय में संचालित होते हैं तो भाषा बनती है। एक हिले दूसरा स्पंदित ही न हो तो संवाद असंभव होगा। हमारे देश में 1652 भाषाएं हैं। उनमें केवल 47 भाषाएं ही स्कूल में बच्चों की समझ का माध्यम बन सकी हैं। बाकी अब भी बिना हिले खामोश हैं। क्या यह खामोशी केवल कुछ भाषाओं और करोड़ों बच्चों के हमेशा के लिए खामोश होने का इशारा है ? सोचना होगा। हमें सोचना होगा कि कोई भी भाषा अपनी सहयोगी भाषाओं के साथ ही विकसित होती है। अगर अभी केवल हिन्दी की बात कहें तो हमें यह भी सोचना होगा कि हिन्दी कई क्षेत्रीय भाषाओं से मिलकर बनी है। सभी साथी भाषाओं के साथ चहचहाती, कदम बढ़ाती भाषा में रचे-बसे बच्चों को उनकी अपनी जबान में सुनना होगा। हमारी बहुत-सी खामोश भाषाएं इंतजार में हैं एक ऐसी पहल की जब दोनों होठ मिलें। बच्चों की समझ और भाषा का तालमेल हो और भाषा में जनतांत्रिक स्थान बने।'

समझ का माध्यम तलाशने की यह पहल अपने सरोकारों में जिन जनतांत्रिक चिंताओं से बावस्ता है, उसे और भी विस्तार से देखने का प्रयास किया जाए। भाषिक और सांस्कृतिक संसार के बीच बढ़ती खाई, अवधारणात्मक मुद्दे पर जारी अस्पष्टता के मूल में कहीं-न-कहीं मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा का शिक्षा के क्षेत्र में

लगातार सिकुड़ता दायरा है। बच्चे के घर की भाषा, आस-पास के वातावरण की भाषा और स्कूल की भाषाओं के बीच एक जुड़ाव या पुल बने बिना बेहतर शिक्षा, खासकर प्राथमिक शिक्षा, की कल्पना तक नहीं की जा सकती। बहुभाषिकता की स्वाभाविक विशेषता को शिक्षा में एक प्रभावी और कारगर, माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। परिसंवाद में ऐसे ढेर सारे मुद्दे उठे।

उद्घाटन और समापन सत्र को छोड़ दें तो कार्यक्रम चार सत्रों में बंटा हुआ था। पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे सत्र में क्रमशः 'बच्चों की भाषा और समझ', 'समझ और माध्यम भाषा', 'बहुभाषिकता' और 'भाषाओं में संवाद' मुद्दों पर गहन विमर्श हुआ। उद्घाटन सत्र में बीज वक्तव्य देते हुए प्रो. अनीता रामपाल, दिल्ली विश्वविद्यालय ने यशपाल कमेटी की उस अनुशंसा को याद दिलाया जिसमें शिक्षा को परिवेश से जोड़ने की कालत करते हुए मातृभाषा को अधिकाधिक स्थान देने की अनुशंसा की गई थी। उन्होंने इस बात को खास तौर पर रेखांकित किया कि शिक्षानीति के तहत कोई भाषा नीति आज तक नहीं बनी। त्रिभाषा सूत्र महज राजनैतिक सूत्र बनकर रह गया। शिक्षा बराबरी के लिए संघर्ष साधन बने ऐसा तो नहीं हुआ, हां हम उल्टी दिशा में जरूर बह गए। स्कूल किस भाषा में संवाद करे? दरअसल भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं है, वह समझ का माध्यम है। अफसोस की बात है कि देश में भाषा और बोली के बीच दीवार बना दी गई है। यह भी वर्चस्व कायम करने का एक तरीका है। उन्होंने पाउलो फ्रैरे को उद्धृत करते हुए कहा कि दरअसल यह भी कल्चर ऑफ साइलेंस का ही एक प्रकार है। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि भाषा समस्या है - यह हमारे इतिहास का एक दुखद पहलू है। कांचा इल्लैया का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि जब कांचा इल्लैया यह कहते हैं कि तेलुगु के प्रचलित रूप में हमारी अस्मिता नजर नहीं आती तब भाषा परिदृश्य के मौजूदा स्वरूप पर हमें पुनर्विचार की जरूरत महसूस होती है। जो हिन्दी पढ़ाई जाती है, उसमें हमारी अस्मिता कितनी दिखती है। जीवन के विविध क्षेत्रों जैसे मजदूर जीवन या टेक्नॉलॉजी में जिन शब्दों का सहज ही इस्तेमाल होता है, उनके प्रति हमारी सहृदयता नहीं है। जो शिक्षा विद्यार्थी को आत्मविश्वास से समृद्ध करे वही अच्छी शिक्षा है। पर भाषा के प्रति हमारी प्रचलित दृष्टि आत्मविश्वास नहीं भरती। कोरिया, कनाडा, क्यूबा, जापान जैसे देश इस बात की विशेष चिन्ता करते हैं कि कोई बच्चा भाषा की समझ में पीछे न रह जाए। दूसरी तरफ भारत में भाषा के जनरूप को पाठ्यचर्या में शामिल करने का जब-जब प्रयास हुआ, तब-तब विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को असुरक्षाबोध सताने लगा। केरल में पाठ्यचर्या ने जब व्यापक वर्ग से जुड़ी भाषा को तरजीह देना शुरू किया, तब विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग ने कहा कि पाठ्यचर्या मलयालम की महानता को अवमूल्यित कर रही है। जबकि

समझ के माध्यम के रूप में अनेक भाषाओं का उपयोग किया जा सकता है। दूसरी भाषा की तरफ बढ़ना हमारी पाठ्यचर्या में शामिल नहीं हैं। हमें वास्तव में एक भाषानीति की तरफ बढ़ना है। उद्घाटन सत्र में एन.सी.ई.आर.टी. के भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रो. रामजन्म शर्मा ने बीज वक्तव्य देते हुए ग्रामीण पृष्ठभूमि के बच्चों की भाषा और समझ के माध्यम पर शिद्द से विचार की जरूरत को रेखांकित किया। उन्होंने बहुभाषिकता को समृद्ध स्रोत बताते हुए कहा कि यह बोज़ नहीं है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं।

उद्घाटन सत्र के बाद पहला सत्र (बच्चों की भाषा और समझ) सम्पन्न हुआ। सत्र की अध्यक्षता डॉ. एच. के. दीवान ने की, जबकि मुख्य वक्ता थे - रोहित धनकर और प्रो. अनिता रामपाल। रोहित धनकर ने अपने वक्तव्य की शुरुआत करते हुए कहा कि भाषा, बच्चे, समझ, पढ़ाई इन सभी मुद्दों को एक तारतम्य देने की जरूरत है। परिसंवाद का विषय है - 'समझ का माध्यम'। माध्यम एक वाहन है। भाषा संप्रेषण का माध्यम है, वह संवाद का माध्यम है, ठीक वैसे ही जैसे बिजली का माध्यम तार है। समझ का अस्तित्व भाषा पर निर्भर है। अन्य शब्दों में भाषा वह स्पेस है, जिसमें मानवीय समझ विकसित होती है। यह कहा जा सकता है कि भाषा मानवीय समझ का आवश्यक आधार है। मातृभाषा में आरंभिक शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा भाषा दूसरी मां है। स्कूल में मातृभाषा का नकार केवल भाषा का नकार नहीं है, उसकी अस्मिता के अस्वीकार का मुद्दा भी है। उन्होंने अपनी बात का विस्तार देते हुए कहा राजनीति और समाजनीति में भाषा एक 'पावर' का भी माध्यम है। उन्होंने पहली से तीसरी तक के बच्चों के लिए समझ माध्यम के रूप में उन्हीं की भाषा को चुनने की आवश्यकता को रेखांकित किया। इसके बाद दूसरी भाषा को स्वीकार करने की स्थिति हो। राज्य की यह भाषा दूसरी भाषा से संवाद की कोशिश करे। इस समझ के साथ जब बच्चा आत्मविश्वास से भरकर उच्च प्राथमिक कक्षा में प्रवेश करेगा तब उसे दूसरी भाषा जैसे अंग्रेजी सीखने में दिक्कत नहीं होगी। प्रो. अनिता रामपाल ने इसे दुखद बताया कि पाठ्यचर्या या क्लास के समय हमारे अहसास गायब हो जाते हैं। उन्होंने कहा कि अक्सर हम शब्दार्थ के नाम पर एक और नाम दे देते हैं। जबकि भाषा का अनुभूति से गहरा संबंध है। इसे एक उदाहरण से समझें - आइसलैंड में बर्फ के लगभग 30 शब्द हैं। दूसरी तरफ भारत में हम जितने तरह की बर्फ देखते हैं, उसमें इतने शब्दों की संभावना नहीं है। तो भावना या अनुभूति की शब्दावली कई बार पाठ्यपुस्तकों में नजर नहीं आती। किताब का पहला ही पन्ना बच्चे का पन्ना नहीं है। विषय सूची बच्चे की समझ की भाषा नहीं होती। उसकी शब्दावली वहां नजर नहीं आती। 'रिमझिम' जैसी किताब इसका अपवाद है। जैसे अभिमानी शेर पर यदि कोई पाठ हो तो सवाल केवल यह नहीं होना चाहिए

कि अभिमानी शेर कौन था ? सवाल यह भी होना चाहिए कि क्या तुम किसी अभिमानी को जानते हो ? भाषा केवल दूसरा पर्याय (यांत्रिक या तकनीकी) जानने की प्रक्रिया नहीं है। अनुवाद में समझ की प्रक्रिया का अभाव गंभीर चिंता का विषय है। अनुवाद के सिलसिले में एक राष्ट्रीय मिशन की जरूरत है। भाषा जिंदगी के अनुभव को बांधने का काम करती है इसे अच्छी तरह समझे बिना समझ का माध्यम समझना संभव नहीं। चर्चा में हिस्सेदारी करते हुए उषा शर्मा ने कहा कि बच्चे की भाषा का इस्तेमाल कर शिक्षक बेहतर समझ विकसित करने का काम कर सकता है। बहुभाषिकता इस संदर्भ में बहुत बड़ा योगदान देती है। उन्होंने राजस्थान के संदर्भों का हवाला देते हुए 'उंदरों' (चूहा), 'धनकड़ों' (कुत्ता), 'मांडना' (चित्र बनाना) जैसे शब्दों में विकसित हुई समझ का पाठ्यपुस्तक अध्यापन में इस्तेमाल करने की बात कही। केदारनाथ पांडेय ने ध्यान दिलाया कि यह बहस सरकारी विद्यालयों के लिए हो रही है। प्रभुवर्गों के विद्यालयों की नीतियां कहां बन रही हैं। प्रभुवर्ग के अनुचर वर्ग के लिए नीतियां बन रही हैं। मगही, मैथिली, भोजपुरी के संदर्भों का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि इन भाषाओं को समझ के माध्यम में स्वीकार करें तो 8.50 करोड़ लोगों को अच्छी शिक्षा दी जा सकती है। बहस में हिस्सेदारी करते हुए संध्या सिंह ने कहा कि बच्चा समझ विकसित करने के क्रम में बार-बार अपनी ही बनायी मूर्ति ढहाता है और सीखता है। शब्द के साथ पूरा परिवेश और बच्चे की पूरी संस्कृति होती है, अनुवाद और शिक्षण में इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। सत्र की अध्यक्षता करते हुए डॉ. एच. के. दीवान ने कहा दुर्भाग्यवश शिक्षा की जो दुनिया बन रही है, वह साझी संस्कृति या साझी भाषा के खिलाफ है। एक तरफ सरकारी विद्यालय हैं तो दूसरी तरफ अभिजन वर्ग के पब्लिक स्कूल हैं। हमारे बुद्धिजीवी अभिजन की भाषा का समर्थन करते हैं। इस सत्र ने उन विडंबनाओं को खंगालने की कोशिश की जिनकी पैदाइश बच्चों की अपनी भाषा के माध्यम भाषा न बन पाने के कारण होती है।

दूसरा सत्र 'समझ और माध्यम भाषा' पर आधारित था। संदर्भ था - हिन्दी में गणित, विज्ञान और समाज विज्ञान। सत्र की अध्यक्षता रोहित धनकर ने की। वक्ता के रूप में डॉ. एच. के. दीवान और प्रो. राजेश सचदेवा ने विचार रखे। संचालन कीर्ति कपूर ने किया। प्रो. राजेश सचदेवा ने अपने अनुभव संदर्भों का उल्लेख करते हुए कहा कि हम सभी स्वभावतः बहुभाषी हैं। गणित, विज्ञान और समाज विज्ञान की समझ विकसित करने में बहुभाषी संदर्भों का सर्जनात्मक उपयोग संभव है। उन्होंने कहा कि किसी भी स्कूल को एकल भाषा माध्यम का नहीं होना चाहिए। वह बहुभाषी होना चाहिए। डॉ. दीवान ने कहा अवधारणाएं गुण को प्रतिबिंबित करती हैं। जब हम गणित, विज्ञान और सामाजिक अध्ययन में आगे बढ़ें तो यह सोचना जरूरी है। जैसे अगर हम कुर्सी को परिभाषित

करें तो हर आदमी की परिभाषा अलग-अलग होगी। तो विज्ञान, गणित को समझने वाले के लिए अवधारणा जरूरी है। जरूरी नहीं कि परिभाषा स्वीकृत शब्दावली में याद करें। जैसा कि रोहित जी ने कहा था, जैसे हम वेब से संचालित होते हैं। अब समझ में संतुलन का मुद्दा आता है। यदि शिक्षण में यह छूट दी जाए कि बच्चा समीकरण अपनी जिंदगी में खुद बनाए तो यह उसकी समझ के लिए अच्छी बात होगी। फिलहाल बच्चे के पास दो भाषाएं हैं, एक वह भाषा जिसमें उसने अपना अस्तित्व गढ़ा। दूसरी वह जो उसके आस-पास होती है। विषय के विकास की भाषा के लिए यह जरूरी है। उनके बीच पुल बने। यह जरूरी है कि कई भाषाओं की सामग्री से वह जूझना सीखे। यह एक बड़ी चुनौती है कि शिक्षक पढ़ना, लिखना, सीखना कैसे सिखाए ? बच्चे अपनी अंतरंग भाषा में जो अवधारणा बनाते हैं, वे उन्हें काफी अजीब होती हैं। इसे एक उदाहरण से समझें - हम बच्चे को गोलाकार या वृत्ताकार समझाना चाहते हैं। क्यों नहीं हम चूड़ी आकार या गेंदाकार करें। दरअसल समझ में इडियम का बड़ा महत्त्व है। बच्चे की समझ से ज्यादाती किए बिना ऐसी शब्दावली तक पहुंचना चाहिए, जिससे उसकी अवधारणा ठीक ढंग से विकसित हो। संवादी प्रेमपाल शर्मा ने मातृभाषा और अर्जित भाषा के फर्क को समझाने के लिए खुद का उदाहरण दिया। उन्होंने कहा उनकी बारहवीं तक की पढ़ाई मातृभाषा हिन्दी में हुई। बारहवीं के बाद की पढ़ाई अंग्रेजी में हुई। इसका अंजाम यह हुआ कि जैसे-जैसे आगे बढ़ा विज्ञान मुझसे छूटता गया। अपनी अवधारणा पर उनकी राय थी कि उनकी सारी अवधारणाएं अपनी भाषा में बनीं। उन्होंने आगे कहा अस्सी के बाद हिन्दी में ज्ञान की दुनिया और सिमटी। यदि राइट टू इनफॉर्मेशन है तो राइट टू मदर लैंग्वेज क्यों नहीं ? हम दुविधा की स्थिति में हैं। एन.सी. एफ. कहता है परिवेश लाइए। जरूरत इस बात की है कि कार्य योजना बने। रोहित धनकर ने अध्यक्षीय उद्बोधन के दौरान कहा, प्रजातांत्रिक राष्ट्र एक से अधिक मान्यताओं में रहते हैं। तकनीकी शब्दावली की समस्या तभी खत्म होगी जब हम पहले अवधारणा दें, फिर शब्द दें। नॉलेज कमीशन परिप्रेक्ष्य को महज आर्थिक नजरिए से देखता है। पैनल के साथ खुला संवाद अत्यंत विचारोत्तेजक था। इस दौरान प्रो. अनिता रामपाल ने कहा बच्चा अपनी भाषा में थोड़ी दूर चले, फिर दूसरी भाषा अंग्रेजी सीखे। उच्च शिक्षा में कम से कम तीन भाषाएं कैसे प्रयोग में लाएं इस पर विचार करना होगा। स्कूली शिक्षा बहुभाषी होगी तो विश्वविद्यालयों में भी यह करना होगा। रोहित धनकर ने अपना पक्ष रखते हुए कहा कि बच्चे की समझ मातृभाषा में ही होती है। राजनैतिक-सामाजिक कारणों से बच्चे को मातृभाषा से काटने के मायने होंगे, उससे यह कहना कि तुम अपने दिमाग छोड़कर आओ। बच्चे को कम से कम तीन साल तक अपनी मातृभाषा में समझ विकसित करने देना

चाहिए। अपनी जड़ों में गहरा पैठा बहुभाषी ही अंग्रेजी के वर्चस्व को तोड़ेगा। अंग्रेजी जरूर सीखना चाहिए, पर बहुभाषी जड़ों को भुलाकर नहीं। अब समय आ गया है कि उच्च शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के बजाए अन्य भाषाओं के स्पेस का प्रयास आरंभ करें।

तीसरा सत्र 'बहुभाषिकता' पर केन्द्रित था, संदर्भ था - 'हिन्दी और आदिवासी भाषाएं'। सत्र की अध्यक्षता प्रो. रामजन्म शर्मा ने की। वक्ता थे प्रो. राजेश सचदेवा और प्रो. ए. के. मिश्रा। प्रसंगवश दोनों वक्ताओं का लंबा अनुभव आदिवासी भाषाओं के माध्यम से शिक्षण और उनके दस्तावेजीकरण से जुड़े रहे हैं। प्रो. सचदेव ने वागड़ी हिन्दी, नागा भाषाओं समेत पूर्वोत्तर की अन्य भाषाओं जैसे अंगामी, आव, सेमा, लोथा इत्यादि के विविध संदर्भों पर मूल्यवान शोध किया है। उसी तरह प्रो. मिश्रा शिलांग में एन. सी.ई.आर.टी. के नार्थ-इस्ट लैंग्वेज डेवलपमेंट प्रोग्राम के तहत आदिवासी भाषाओं के व्याकरण, शब्दकोश आदि पर काम कर चुके हैं। दोनों वक्ताओं का एक उल्लेखनीय प्रसंग यह भी है कि दोनों ने 'नागालैंड लैंग्वेज पॉलिसी' के निर्माण में केन्द्रीय भूमिका निभाई थी।

प्रो. राजेश सचदेव ने हिन्दी, अंग्रेजी, तमिल, आदिवासी भाषाओं आदि संदर्भों का उल्लेख करते हुए कहा भाषा की प्रकृति, ध्वनि जानने की कोशिश करें, तब हम सीखने वाले के बारे में समझ सकेंगे। अर्थ के साथ शब्द के ऊपर टैग लग जाता है, जिसका एक आधार होता है। ध्वनियों के अंदर बने नियम से कट्रास्ट पैदा होता है, जो हमें पहचान में मदद देता है।

भाषा के अलग-अलग संदर्भों से अलग-अलग प्रसंग जुड़े होते हैं। उनका एक संवादधर्मी रूप होता है। आदिवासी भाषाओं के संदर्भ में प्रो. सचदेव ने कहा बच्चे की बोली भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितना किताब में लिखे शब्द। यह दुखद है कि झारखंड के स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों और समझ के माध्यम में आदिवासी भाषाओं के संदर्भ अनुपस्थित हैं। भाषा यदि हटती है तो वह क्षेत्र की संस्कृति के लिए एक बड़ा खतरा है। उन्होंने आदिवासी भाषाओं-बोली को अध्ययन संदर्भ में शामिल कर ही समझ के कौशल विकसित करने की जरूरत को रेखांकित किया। प्रो. ए.के. मिश्रा ने अपनी बात की शुरुआत करते हुए कहा कि पहली बात तो यह कि हमें समझना होगा कि बहुभाषिक शिक्षा की जरूरत आखिर क्यों है। वस्तुतः जो कम संख्या में बोली जाने वाली भाषाएं हैं, उनके बच्चों को भी शिक्षा से जोड़ने की जरूरत है। बहुभाषिकता का संदर्भ विशेषकर अल्पसंख्यक समाज को शिक्षा से जोड़ने की मुहिम के रूप में आया था। हमारी मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में आदिवासी बच्चे स्कूल में बिल्कुल नई भाषा पाते हैं। कहीं वह हिन्दी होती है तो कहीं, अंग्रेजी, बंगला या उड़िया आदि। अब सवाल यह है कि उन बच्चों को कैसे मुख्यधारा में लाएं। ऐसे बच्चों में अनेक बच्चे ऐसे

हैं, जो पांचवी-छठी तक पढ़ाई छोड़ देते हैं। यदि उन्हें प्राथमिक शिक्षा अपनी भाषा और परिवेश की पाठ्यपुस्तकों में मौजूदगी के अहसास के साथ दी जाती तो उनकी समझ कहीं ज्यादा उन्नत होती। 1966 का त्रिभाषा सूत्र एक नीति नहीं है, कार्यक्रम है। इसमें भारतीय भाषाओं के विशाल संदर्भ को छोड़ दिया गया। बहुभाषिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य परिवेश का बेहतर इस्तेमाल है। वह इस कदर कुशल हो जाए तो माध्यम बदलने के पहले उसके पास एक मजबूत आधार बन जाएगा जो दूसरी भाषा सीखने में मदद करेगा।

उन्होंने एन.सी.ई.आर.टी. संदर्भों का उल्लेख करते हुए बताया कि पहले बच्चे को सुनाई जाए, फिर सिखाएं, फिर लिखाएं-पढ़ाएं। उन्होंने माध्यम के रूप में बहुभाषिकता की समस्याओं का भी उल्लेख किया। अनेक आदिवासी भाषाएं अभी तक लिखी नहीं गई। माध्यम के रूप में भाषा को पढ़ना अलग है। एक विषय के रूप में भाषा को पढ़ना अलग है। लिपि की समस्या बहुत आड़े आती है, बहुभाषिकता के संदर्भ में। भाषा शिक्षकों की उपलब्धता एक अलग समस्या है, जिसके लिए प्रशिक्षण जरूरी है। डॉ. अहमद सज्जाद, मिथिलेश्वर समेत अन्य वक्ताओं ने भी विचार रखे। अध्यक्षीय उद्बोधन के दौरान प्रो. रामजन्म शर्मा ने डॉ. अहमद सज्जाद असहमति प्रकट करते हुए कहा उर्दू भाषा को एन.सी.ई.आर.टी. नजरअंदाज नहीं कर रही है। परिषद् द्वारा 180 पुस्तकों के उर्दू अनुवाद का जिक्र करते हुए कहा कि 'हमें इस तथ्य के कारणों की तलाश करनी होगी कि क्यों उर्दू किताबें कम बिकती हैं। उन्होंने कहा जब समाज बहुभाषिक है तो समझ का माध्यम भी बहुभाषिक होना चाहिए।

चौथा सत्र 'भाषाओं में संवाद' पर आधारित था। वक्ता अरुण कमल ने हिन्दी-अंग्रेजी भाषा के बीच संबंध के तीन चरणों का उल्लेख किया। उन्होंने कहा 1947 तक हिन्दी और अंग्रेजी में एक खास तरह का संबंध था। गांधी, नेहरू, भगतसिंह सरीखे लोग बहुत अच्छी अंग्रेजी जानते थे। सबने अपनी भाषा के लिए लड़ाई की, पर अंग्रेजी से नफरत नहीं की। जब गांधी कहते थे कि 'कह दो गांधी अंग्रेजी नहीं जानता तो उनका आशय था अपनी भाषा में काम करना चाहिए।' वैज्ञानिक बोस, दोउसकर जैसे लोगों ने अपनी भाषा में लिखा। 1947 के बाद स्थितियां बदलीं। आज पहले दर्जे के इतिहासकार, समाज शास्त्री हिन्दी में नहीं के बराबर लिखते हैं। नालीकर जैसे वैज्ञानिकों की गिनती भी कम है। 1967 में अंग्रेजी का विरोध शुरू हुआ। साईनबोर्ड पोते गए, अंग्रेजी के प्रति घृणा का प्रसार शुरू हुआ। नेहरू ने डिसकवरी ऑफ इंडिया में जो कहा था वह ध्यान देने लायक है। उन्होंने कहा था सवाल यह है कि कौन-सा इंग्लैण्ड भारत आया था। शेक्सपियर, मिल्टन का इंग्लैण्ड या फिर ईस्ट इंडिया कंपनी का इंग्लैण्ड। 1967 के बाद दो वर्ग बन गए - जो अंग्रेजी जानता है और जो नहीं जानता है। 1987 से फिर

## खेल का मैदान

स्थितियां बदलीं। इस दौर में गांव-गांव में अंग्रेजी स्कूल खुल गए। यह प्रतिक्रिया थी। यह अंग्रेजी-हिन्दी का संवाद नहीं था।

उन्होंने कहा आजादी के बाद ज्ञान के संसार की सूरत बदल गई। अब लोग जानकार हैं, ज्ञानी नहीं। आज जो लड़ाई भारतीय भाषाएं अंग्रेजी से लड़ रही हैं, वही लड़ाई एक जमाने में लैटिन से अंग्रेजी ने लड़ी थी। अंग्रेजी ने 17वीं से 20वीं सदी तक लड़ाई लड़ी और ज्ञान की सबसे बड़ी भाषा बन गई। 1987 से 2007 तक अंग्रेजी आगे बढ़ती गई और अन्य भारतीय भाषाएं पिछड़ती गईं। हमारे देश ने आजादी के बाद जो सबसे बड़ा नुकसान पाया है, वह है स्वाभिमान की कमी का। हमारे देश में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जैसा कि बिल क्लिंटन के बारे में एक खबर आई थी। क्लिंटन ने बीस लोगों को एक शाम खाने पर बुलाया और एक अमेरिकी उपन्यास का पूरा पैरा हू-ब-हू सुनाया। अंग्रेजी के संदर्भ में भारत में एक संदर्भ 67 में उभरा वह नफरत का था। उसके बाद से अब तक का दौर आया जो पूजा भाव पर आधारित था। रूस, जर्मनी, चीन, जापान अपनी भाषा को जीवित रखते हुए आगे बढ़े भारत में ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने अपनी मातृभाषा के विद्यालय सब जगह खोलने की बात की, लेकिन वहां अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के स्पेस को मौजूद रखने की जरूरत को भी रेखांकित किया। मिथिलेश्वर ने अंग्रेजी के उभरते स्वरूप पर चिंता जताते हुए कहा कि स्वाधीनता के पहले मैकाले ने अंग्रेजी थोपने की कोशिश की थी, आज वह सब जगह छा गई है। उन्होंने ज्ञान की एक मात्र भाषा अंग्रेजी की सोच को गलत बताया।

इस आयोजन ने जिस पहल को अपना उद्देश्य घोषित किया था, उस दिशा में यह उल्लेखनीय प्रयास था। परिषद् के नुमाइंदों ने बताया ऐसे और आयोजन भी होंगे जो संबंध 'समझ का माध्यम, बहस को आगे बढ़ाएंगे। जैसा कि इस मौके पर वितरित ब्रोशर में परिषद् ने घोषित किया था :-

‘राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 में इस बात को पुरजोर तरीके से फिर से कहने की जरूरत पड़ी कि बच्चों की घर की भाषा स्कूल में भी उनकी समझ का माध्यम बने ताकि बच्चे रटने की बजाय समझकर पढ़ने की दिशा में आगे बढ़ें। शिक्षा उनके लिए बोझ न बनकर एक आनंददायी अनुभव बने।

जाहिर है इसके पीछे कुछ भ्रम और बहुत-सी ऐसी उलझनें हैं जो एक देशव्यापी बहस की मांग करती हैं। एक ऐसी शुरुआत जो शिक्षा के क्षेत्र में मुहिम का रूप ले सके। इसलिए आज जरूरत है कि ‘समझ का माध्यम’ संबंधी समझ बनाने में एक सकारात्मक पहल की जाए।’ ♦

मेरे घर की बगल में  
बच्चों के खेलने का मैदान है,  
होने को तो कुछ भी हो सकता है,  
वहां गायें उठती, बैठती, जुगाली करती दिख जाती हैं,  
सभाओं, जलसों के लिए भी यह स्थान तय है,  
यों होलिका दहन भी होता है और,  
गढ़ते हैं शादियों के शामियाने भी।  
पर है वह खेल का मैदान ही।

गायें शहर की हर खाली जगह को  
अपना घर बना लेती हैं  
सभाओं के सज्जन भी  
विद्वतापूर्ण वक्तृता के बाद भुला देते हैं इसे  
होली जलती है वर्ष में एक बार, और  
गढ़ते हैं शामियाने भी यदा-कदा।

पर हर बच्चा देख रहा होता है  
मैदान का स्वप्न हर सुबह  
जब उसकी मां उसे स्कूल के लिए  
झिंझोड़कर जगाती है

सिर्फ बच्चों के माथों, टखनों, घुटनों पर  
मैदान के पत्थरों से लगे चोट के निशान हैं

मैदान की भूरी मुलायम मिट्टी में छिपे  
गोखरुओं से सिर्फ बच्चों का परिचय है

कल जब बढ़ती आबादी ग्रस लेगी इसे  
तब भी ये मौजूद होगा  
उनकी आंखों, स्वप्नों, हसरतों में

कल जब बच्चे नहीं रहेंगे बच्चे  
और उनका मन चाहेगा

कुलांचे भरना  
मिट्टी में लोटना

और देखेंगे जब माथों, टखनों, कुहनियों के निशान  
तब-तब याद आयेगा उन्हें यह खेल का मैदान

मनोज कुमार मीणा